संपादकीय

मैसूर साहित्य उत्सव के बहाने...

"किताबें झाँकती हैं बंद अलमारी के शीशों से..." गुलज़ार की ये पंक्तियाँ आज के समय में वाचन-संस्कृति की बदलती तस्वीर को बड़ी खूबसूरती से सामने रखती हैं। इन दिनों मैसूर में साहित्य उत्सव चल रहा है। मैसूर मेरा सबसे प्रिय शहर है। महलों की भव्यता, चौड़ी सड़कें, चामुंडी पहाड़ियाँ, दशहरे की परंपरा और विशिष्ट सांस्कृतिक गरिमा इस शहर को अलग पहचान देती हैं। इस शहर की एक और विशेषता है कि आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए भी यह अपनी सांस्कृतिक जड़ों से अलग नहीं हुआ। शायद इसीलिए जब यहाँ साहित्य का उत्सव सजता है, तो वह केवल एक आयोजन भर नहीं रह जाता। ऐसा लगता है जैसे शहर अपनी रोज़मर्रा की व्यस्तता से कुछ समय निकालकर शब्दों के पास बैठ गया हो।

पिछले कुछ वर्षों में साहित्यिक उत्सवों की संख्या तेजी से बढ़ी है। छोटे-बड़े शहरों में लेखक, कवि, विचारक, पत्रकार और पाठक एक मंच पर दिखाई देने लगे हैं। कहीं नई पुस्तकों पर चर्चा होती है, कहीं समाज और समय के प्रश्न उठते हैं, कहीं कविता सुनाई जाती है, तो कहीं लेखक अपनी रचना-यात्रा पाठकों के साथ साझा करते हैं। इन आयोजनों की बढ़ती लोकप्रियता को देखकर मन में यह प्रश्न उठता है कि जिस समय में लगातार यह कहा जा रहा है कि पढ़ने की आदत कम हो रही है, उसी समय साहित्यिक उत्सवों में इतनी भीड़ क्यों बढ़ रही है? शायद इसलिए कि मनुष्य को आज भी शब्दों की, पुस्तकों की और साहित्य की आवश्यकता है।

हम एक ऐसे समय में जी रहे हैं, जहाँ सूचनाओं की कोई कमी नहीं है। सुबह आँख खुलने से लेकर रात को सोने तक हम अनगिनत समाचारों, संदेशों, चित्रों और विचारों से घिरे रहते हैं। मोबाइल की छोटी-सी स्क्रीन ने पूरी दुनिया को हमारे सामने ला खड़ा किया है। हम बहुत कुछ देखते, सुनते और पढ़ते हैं, लेकिन क्या वास्तव में उस पर विचार कर पाते हैं? हर व्यक्ति के पास अपनी बात कहने का मंच है, लेकिन सुनने वाले कम होते जा रहे हैं। प्रतिक्रियाएँ तुरंत आती हैं और असहमतियाँ बहुत जल्दी विवादों में बदल जाती हैं। ऐसे समय में साहित्य हमें ठहरना सिखाता है।

साहित्यिक उत्सव लेखक और पाठक के बीच की दूरी को कम करते हैं। जिस लेखक को हमने अब तक केवल उसकी पुस्तकों के माध्यम से जाना, उसे सामने बैठकर सुनना एक अलग अनुभव होता है। उसकी रचना-प्रक्रिया, संघर्ष और विचार हमें यह समझने का अवसर देते हैं कि कोई पुस्तक केवल कागज़ पर लिखे शब्दों से

नहीं बनती। उसके पीछे एक पूरा जीवन, अनुभवों की लंबी यात्रा और अपने समय से जूझता हुआ एक संवेदनशील मन होता है। लेकिन साहित्यिक उत्सवों की वास्तविक सार्थकता संवाद में है। हमारे समाज में संवाद की जगह लगातार कम होती जा रही है। हम अपने जैसे विचार रखने वालों के बीच अधिक सहज महसूस करते हैं। जो हमारी बात से सहमत है, वह अपना लगता है और जो असहमत है, उससे दूरी बना लेना आसान लगता है। धीरे-धीरे हम ऐसे वैचारिक घेरों में बंद होते जा रहे हैं, जहाँ हमें केवल अपनी ही आवाज़ सुनाई देती है। साहित्य इन घेरों को तोड़ता है। एक अच्छी पुस्तक हमें ऐसे विचार से परिचित करा सकती है, जिससे हम सहमत न हों। एक कहानी हमें ऐसे जीवन के करीब ले जा सकती है, जिसे हमने कभी जिया नहीं। एक कविता हमारे भीतर उस संवेदना को जगा सकती है, जिसे हम रोज़मर्रा की भागदौड़ में कहीं पीछे छोड़ आए हैं। जब यही साहित्य पुस्तक के पन्नों से निकलकर सार्वजनिक मंच पर आता है, तो संवाद की संभावनाएँ और व्यापक हो जाती हैं।

साहित्यिक उत्सवों का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि भारत का साहित्य किसी एक भाषा में नहीं बसता। देश की अनेक भाषाओं में लिखा जा रहा साहित्य मिलकर भारतीय साहित्य की विशाल दुनिया बनाता है। फिर भी एक भाषा में लिखा गया महत्वपूर्ण साहित्य दूसरी भाषाओं के पाठकों तक बहुत देर से पहुँचता है, कभी-कभी पहुँच ही नहीं पाता। ऐसे में साहित्यिक उत्सव भाषाओं के बीच पुल बनने का काम कर सकते हैं। लेकिन हर उत्सव की तरह साहित्यिक उत्सवों के सामने भी कुछ प्रश्न हैं। क्या ये उत्सव वास्तव में आम पाठक तक पहुँच रहे हैं? क्या इनमें युवा और नए लेखकों के लिए पर्याप्त स्थान है? क्या गंभीर साहित्यिक चर्चाओं की जगह कभी-कभी प्रसिद्ध चेहरों और लोकप्रिय विषयों का आकर्षण अधिक महत्वपूर्ण नहीं हो जाता?

किसी आयोजन की सफलता केवल वहाँ उपस्थित भीड़ से नहीं आँकी जा सकती। उसकी सफलता इस बात में है कि वहाँ से लौटते हुए पाठक अपने साथ क्या लेकर जाता है। क्या उसके भीतर किसी नई पुस्तक को पढ़ने की इच्छा जागी? क्या किसी चर्चा ने उसके भीतर कोई प्रश्न पैदा किया? क्या वह किसी ऐसे विचार से परिचित हुआ, जिसके बारे में उसने पहले कभी नहीं सोचा था? यदि ऐसा होता है, तभी साहित्यिक उत्सव वास्तव में सफल है।

आज के युवाओं को साहित्य से दूर मान लेना भी उचित नहीं है। यह सही है कि उनके पढ़ने के तरीके बदल गए हैं। वे डिजिटल माध्यमों से जुड़े हैं, ऑडियोबुक सुनते हैं और ई-बुक पढ़ते हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि साहित्य में उनकी रुचि समाप्त हो गई है। आवश्यकता केवल इतनी है कि साहित्य उनके पास नए रास्तों से पहुँचे। अंततः साहित्य का भविष्य पाठकों से ही बनता है। पुस्तकें तभी जीवित रहती हैं, जब उन्हें पढ़ने वाले लोग हों। साहित्यिक उत्सव इसलिए केवल कुछ दिनों का उत्सव न हों, बल्कि हमें यह भी याद दिलाएँ कि तेजी से बदलती दुनिया में शब्दों की आवश्यकता समाप्त नहीं हुई है, शायद पहले से अधिक बढ़ गई है। उत्सव समाप्त

होने के बाद मंच हट जाएँगे, सभागार खाली हो जाएँगे और लेखक तथा पाठक अपने-अपने घरों को लौट जाएँगे। लेकिन यदि किसी पाठक के मन में कोई प्रश्न रह गया, किसी पुस्तक को पढ़ने की इच्छा जाग गई, किसी अनजान भाषा के साहित्य को जानने की उत्सुकता पैदा हुई या किसी विचार ने भीतर थोड़ी-सी हलचल पैदा कर दी, तो समझना चाहिए कि उत्सव समाप्त नहीं हुआ। वह उस पाठक के भीतर अब भी चल रहा है।

'आखर' के इस अंक में शोधालेखों के साथ, लेख, कविता और पुस्तक समीक्षा है। आशा है आपको यह अंक पसंद आएगा। आपका स्नेह और सहयोग हमें हमेशा मिलता रहे ताकि हम 'आखर' के माध्यम से साहित्य की सेवा कर सकें।

इति नमस्कारन्ते

प्रधान संपा

प्रतिभा मुदलियार

This work is licensed under CC BY-NC 4.0

https://doi.org/10.5281/zenodo.21440946